



वीतराग-विज्ञान (सितम्बर-मासिक) \* 26 अगस्त 2010 • वर्ष 29 • अंक 2

## सम्पादकीय

### नियमसार : एक अनुशीलन

#### नियमसार गाथा ६१

विगत पाँच गाथाओं में पाँच महाव्रतों की चर्चा की गई है; अब आगामी पाँच गाथाओं में पाँच समितियों की चर्चा करेंगे। इस ६१वीं गाथा में ईर्यासमिति नामक पहली समिति की चर्चा करते हैं। गाथा मूलतः इसप्रकार है -

पासुगमगेण दिवा अवलोगंतो जुगप्पमाणं हि।

गच्छइ पुरदो समणो इरियासमिदी हवे तस्स ॥६१॥

( हरिगीत )

जिन श्रमण धुरा प्रमाण भूलख चले पासुक मार्ग से।

दिन में करें विहार नित ही समिति ईर्या यह कही ॥६१॥

जो श्रमण पासुक (निर्जन्तु) मार्ग पर दिन में धुरा प्रमाण अर्थात् चार हाथ जमीन देखकर चलते हैं; उन मुनिराजों के उक्त सावधानी पूर्वक होनेवाले गमन (विहार) और तत्संबंधी भावों को ईर्यासमिति कहते हैं।

इस गाथा के भाव को तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यहाँ ईर्यासमिति का स्वरूप कहा गया है। जो परमसंयमी मुनिराज, देवदर्शन या गुरु से मिलने आदि के प्रशस्त प्रयोजनवश स्थावर-जंगम जीवों की रक्षा के हेतु से चार हाथ आगे मार्ग को देखते हुए दिन में विहार करते हैं; उनके ईर्यासमिति होती है।

यह व्यवहारसमिति का स्वरूप है, अब आगे निश्चयसमिति का स्वरूप कहते हैं।

अभेद-अनुपचार रत्नत्रयमार्ग से परमधर्मी निजात्मा के प्रति सम्यक् इति-गति-परिणति ही निश्चय समिति है अथवा निजपरमतत्त्व में लीन सहज परमज्ञानादि परम-धर्मों की संहति-मिलन-संगठन ही निश्चयसमिति है।

इसप्रकार निश्चय और व्यवहाररूप समिति के भेदों को जानकर उनमें से हे भव्यजीव ! परमनिश्चयसमिति को प्राप्त करो।”

इस गाथा और उसकी टीका के भाव को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“भावलिङ्गी सन्त मुनियों को भी छोटे गुणस्थान में सम्मेदशिखर, गिरनार आदि तीर्थों की यात्रा का भाव होता है। भगवान समवशरण में विराजते हैं, वहाँ उनके

दर्शन करने के लिये जाने का भाव होता है, वह देवयात्रा का भाव है। गुरु विराजते हों, उनके पास श्रवण आदि करने के लिए जाने का विकल्प उठे, वह गुरुयात्रा है। ऐसे प्रयोजन के उद्देश्य से जो मुनिराज गमन करते हैं, तब चार हाथ प्रमाण मार्ग देखकर जीवों की रक्षा करते हुए चलते हैं; उनके ईर्यासमिति होती है।<sup>१</sup>

छठे गुणस्थान में निश्चयपूर्वक ऐसी व्यवहारसमिति होती है।<sup>२</sup>

व्यवहारसमिति में बाहर में रास्ता देखकर चलने की बात थी और यहाँ निश्चय में सम्यक्परिणत के मार्ग में परमधर्मी ऐसे अपने आत्मा के प्रति सम्यक्परिणति वह समिति है। अथवा आत्मा में सहज परमज्ञानादि परमधर्म प्रकट हुए हैं; उनकी संहति ही निश्चय समिति है। जो सहज सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्रदशा प्रकटी है, उसकी आत्मा में लीनता निश्चयसमिति है।<sup>३</sup>

निश्चय और व्यवहार दोनों का ज्ञान कराया, किन्तु उन दोनों में से आदरणीय तो परमनिश्चयवीतरागीसमिति ही है, उसको भव्यजीवों प्राप्त करो। स्वरूप की वीतरागी-परिणति में ठहरो और जो राग हो, उसके मात्र ज्ञाता बने रहो।<sup>४</sup>

छठे-सातवें गुणस्थानवाले मुनि की शुद्धपरिणति तो निश्चयसमिति है और छठे गुणस्थान में उठनेवाला विकल्प व्यवहारसमिति है। उन दोनों में से परमवीतरागी निश्चयसमिति को प्राप्त करो - ऐसा उपदेश है।<sup>५</sup>

इस गाथा और उसकी टीका में निश्चय-व्यवहार ईर्यासमिति का स्वरूप समझाया गया है। अपने आत्मा में श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र की परिणति ही निश्चय ईर्यासमिति है और देवदर्शन, गुरुदर्शन, तीर्थदर्शन आदि के शुभ विकल्पपूर्वक त्रस-स्थावर जीवों की रक्षा के भाव से चार हाथ आगे तक जमीन को देखकर दिन में विहार करना व्यवहार ईर्यासमिति है।

अध्यात्मरस के रसिया टीकाकार मुनिराज टीका के अन्त में यह कहना नहीं भूले कि दोनों प्रकार की समितियों को भलीभांति जानकर परमनिश्चय समिति को प्राप्त करो। तात्पर्य यह है कि व्यवहार समिति तो पुण्यबंध का कारण है; किन्तु निश्चयसमिति बंध के अभाव का कारण है, मुक्ति का कारण है। अतः परम उपादेय तो वही है।

इस गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमल-धारिदेव चार छन्द लिखते हैं; जिनमें पहला छन्द इसप्रकार है -

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ५२२

२. वही, पृष्ठ ५२३

३. वही, पृष्ठ ५२३-५२४

४. वही, पृष्ठ ५२४

५. वही, पृष्ठ ५२४

( मंदाक्रांता )

इत्थं बुद्ध्वा परमसमितिं मुक्तिकान्तासखीं यो ।  
मुक्त्वा संगं भवभयकरं हेमरामात्मकं च ।  
स्थित्वाऽपूर्वं सहजविलासच्चिच्चमत्कारमात्रे  
भेदाभावे समयति च सः सर्वदा मुक्त एव ॥८१॥

( हरिगीत )

मुक्तिकान्ता की सखी जो समिति उसको जानकर ।  
जो संत कंचन-कामिनी के संग को परित्याग कर ॥  
चैतन्य में ही रमण करते नित्य निर्मल भाव से ।  
विलग जग से निजविहारी मुक्त ही हैं संत वे ॥८१॥

इसप्रकार मुक्तिकान्ता की सखी परमसमिति को जानकर जो जीव भवभय करनेवाले कंचन-कामिनी के संग को छोड़कर, सहजविलासरूप अपूर्व अभेद चैतन्यचमत्कारमात्र में स्थित रहकर उसमें सम्यक् गति करते हैं अर्थात् सम्यक् रूप से परिणमित होते हैं; वे सर्वदा मुक्त ही हैं ।

इसप्रकार इस छन्द में यही कहा गया है कि समिति मुक्तिरूपी पत्नी की सखी (सहेली) है और कंचन-कामिनी के त्यागी निश्चय-व्यवहार समिति के धारक मुनिराज एक अपेक्षा से मुक्त ही हैं ।

दूसरा छन्द इसप्रकार है -

( मालिनी )

जयति समितिरेषां शीलमूलं मुनीनां  
त्रसहतिपरिदूरा स्थावराणां हतेर्वा ।  
भवदवपरितापक्लेशजीमूतमाला  
सकलसुकृतसीत्यानीकसन्तोषदायी ॥८२॥

( हरिगीत )

जयवंत है यह समिति जो त्रस और थावर घात से ।  
संसारदावानल भयंकर क्लेश से अतिदूर है ॥  
मुनिजनों के शील की है मूल धोती पाप को ।  
यह मेघमाला सींचती जो पुण्यरूप अनाज को ॥८२॥

जो समिति मुनिराजों के शील का मूल है, जो त्रस और स्थावर जीवों के घात से पूर्णतः दूर है, जो भवदावानल के परिणामरूपी क्लेश को शान्त करनेवाली है और समस्त पुण्यरूपी अनाज के ढेर को पोषण देकर संतोष देनेवाली मेघमाला है - ऐसी

यह समिति जयवंत वर्तती है।

उक्त छन्द में त्रस और स्थावर जीवों के घात से अतिदूर समिति को मुनिराजों के शील का मूल कहा गया है। साथ में भवदावानल के ताप को दूर करनेवाली और पुण्य को प्राप्त करनेवाली बताया गया है।

तीसरा छन्द इसप्रकार है -

( मालिनी )

नियतमिह जनानां जन्म जन्मार्णवेऽस्मिन्

समितिविरहितानां कामरोगातुराणाम् ।

मुनिप कुरु ततस्त्वं त्वन्मनोगेहमध्ये

ह्यपवरकममुष्याश्चारुयोषित्सुमुक्तेः ॥८३॥

( हरिगीत )

समिति विरहित काम रोगी जनों का दुर्भाग्य यह।

संसार-सागर में निरंतर जन्मते-मरते रहें।

हे मुनिजनों ! तुम हृदयघर में सावधानी पूर्वक।

जगह समुचित सदा रखना मुक्ति कन्या के लिए ॥८३॥

इस विश्व में यह सुनिश्चित ही है कि इस भवसागर में समिति से रहित, इच्छारूपी रोग से पीड़ित जनों का जन्म होता है। इसलिए हे मुनिराजो ! तुम अपने मनरूपी घरों में इस मुक्तिरूपी स्त्री के लिए आवास की व्यवस्था रखना, इसका सदा ध्यान रखना।

उक्त छन्द में टीकाकार मुनिराज मुनिराजों को सावधान कर रहे हैं कि समितियों की उपेक्षा करनेवाले संसार-सागर में गोते लगाते रहते हैं; मुक्ति की प्राप्ति तो निश्चयसमितियों के पालकों को ही होती है।

चौथा छन्द इसप्रकार है -

( आर्या )

निश्चयरूपां समितिं सूते यदि मुक्तिभागभवेन्मोक्षः ।

बत न च लभतेऽपायात् संसारमहार्णवे भ्रमति ॥८४॥

( दोहा )

जो पाले निश्चय समिति, निश्चित मुक्ति जाँहि।

समिति भ्रष्ट तो नियम से भटकेँ भव के माँहि ॥८४॥

यदि जीव निश्चयरूप समिति को उत्पन्न करता है, प्राप्त करता है, धारण करता

है तो वह मुक्ति को अवश्य प्राप्त करता है, मोक्षरूप होता है; परन्तु अरे रे समिति के नाश से, अभाव से मुक्ति को प्राप्त नहीं कर पाता, संसाररूप महासागर में भटकता रहता है, गोता लगाता रहता है।

इस छन्द में पूर्व छन्द की बात को ही दुहराया गया है कि निश्चयसमिति के धारक अवश्य ही मुक्ति की प्राप्ति करते हैं और समितियों की उपेक्षा करनेवाले भव-भव में भटकते हैं।

### नियमसार गाथा ६२

विगत गाथा, उसकी टीका और उसमें समागत छन्दों में ईर्यासमिति का स्वरूप और महिमा बताने के बाद अब इस गाथा में भाषा समिति का स्वरूप स्पष्ट करते हैं।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

पेसुण्णहासकक्कसपरणिंदप्पप्पसंसियं वयणं ।  
परिचत्ता सपरहिदं भासासमिदी वदंतस्स ॥६२॥

( हरिगीत )

परिहास चुगली और निन्दा तथा कर्कश बोलना।

यह त्यागना ही समिति दूजी स्व-पर हितकर बोलना ॥६२॥

चुगली करना, हँसी उड़ाना, कठोर भाषा का प्रयोग करना, दूसरों की निन्दा करना और अपनी प्रशंसा करना - इन कार्यों के त्यागी और स्वपरहितकारी वचन बोलनेवाले के भाषा समिति होती है।

इस गाथा के भाव को तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमल-धारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यहाँ भाषा समिति का स्वरूप कहा गया है।

चुगलखोर मनुष्य के मुँह से निकले हुए और राजा के कान तक पहुँचे हुए; किसी एक पुरुष, एक कुटुम्ब या किसी एक गाँव को महाविपत्ति के कारणभूत वचनों को पैशून्य (चुगली) कहते हैं।

कहीं, कभी, किंचित् परजनों के विकृतरूप को देखकर अथवा सुनकर हास्य नामक नोकषाय से उत्पन्न होनेवाला, किंचित् शुभ के साथ मिश्रित होने पर भी अशुभ कर्म का कारण, पुरुष के मुख से विकार के साथ संबंधवाला हास्य कर्म है।

कान के छेद के पास पहुँचने मात्र से जो दूसरों को अप्रीति उत्पन्न करते हैं, ऐसे वचन कर्कश वचन हैं।

10 वीतराग-विज्ञान (सितम्बर-मासिक) \* 26 अगस्त 2010 • वर्ष 29 • अंक 2

दूसरों में विद्यमान-अविद्यमान दोषों को कहनेवाले वचन परनिन्दा है और अपने विद्यमान-अविद्यमान गुणों की स्तुति आत्मप्रशंसा है।

इन सब अप्रशस्त वचनों के त्यागपूर्वक स्व और पर को शुभ व शुद्ध परिणति के कारणभूत वचन भाषा समिति हैं।”

यद्यपि चुगली, हास्य, कर्कश, निन्दा, प्रशंसा - ये शब्द सामान्य-जनों के लिए अत्यन्त सुपरिचित शब्द हैं; तथापि यहाँ टीका में उन्हें भी परिभाषित किया गया है। उक्त सभी प्रकार के स्व-पर अहितकारी अप्रशस्त वचनों के त्यागपूर्वक स्व-पर हितकारी प्रिय परिमित वचनों का उपयोग और तत्संबंधी भाव भाषासमिति हैं।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज ‘तथा गुणभद्रस्वामी ने भी कहा है’ - ऐसा कहकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

( मालिनी )

समधिगतसमस्ताः सर्वसावद्यदूराः

स्वहितनिहितचित्ताः शांतसर्वप्रचाराः ।

स्वपरसफलजल्पाः सर्वसंकल्मुक्ताः

कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ताः॥<sup>१</sup>

( वीर )

जान लिये हैं सभी तत्त्व अर दूर सर्व सावद्यों से।

अपने हित में चित्त लगाकर सर्व प्रकार से शान्त हुए॥

जिनकी वाणी स्वपर हितकरी संकल्पों से मुक्त हुए।

मुक्ति भाजन क्यों न हो जब सब प्रकार से मुक्त हुए॥

जिन्होंने वस्तुस्वरूप को जान लिया है, जो सभी प्रकार के सावद्य (पापकर्म) से दूर हैं, जिन्होंने अपने चित्त को स्वहित में स्थापित किया है, जिनके प्रचारित होने से विकल्प शान्त हो गये हैं, जिनका बोलना स्व-परहित से सफल है और सभी प्रकार के संकल्पों से विशुद्ध हैं; ऐसे विमुक्त पुरुष इस लोक में मुक्ति के भाजन क्यों नहीं होंगे?

गुणभद्राचार्य के आत्मानुशासन के इस छन्द में भाषासमिति के संबंध में कुछ विशेष नहीं कहा गया है; अपितु सामान्यरूप से मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी मुनिवरों का स्वरूप ही स्पष्ट किया गया है। कहा गया है कि वस्तुस्वरूप के जानकार, पापकर्मों से अत्यन्त दूर, अपने में ही मगन, शान्तचित्त, हित-मित-प्रिय वचनों से

१. आत्मानुशासन, पृष्ठ २२६

अलंकृत, भव-भोगों से विरक्त मुनिराज अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी हैं।  
इसके बाद टीकाकार मुनिराज एक छन्द स्वयं लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( अनुष्टुभ् )

परब्रह्मण्यनुष्ठाननिरतानां मनीषिणाम् ।

अन्तरैरप्यलं जल्पैः बहिर्जल्पैश्च किं पुनः ॥८५॥

( दोहा )

आत्मनिरत मुनिवरो के अन्तर्जल्प विरक्ति।

तब फिर क्यों होगी अरे बहिर्जल्प अनुरक्ति ॥८५॥

परब्रह्म के अनुष्ठान में निरत मनीषियों के जब अन्तर्जल्प से भी विरक्ति है तो फिर बहिर्जल्प की तो बात ही क्या करें; उनसे तो विरक्ति नियम से होगी ही।

उक्त छन्द में भी यही कहा गया है कि आत्मज्ञानी-ध्यानी मुनिराज अन्तर्बाह्य विकल्पों से पार पहुँच गये होते हैं।

### नियमसार गाथा ६३

ईर्यासमिति और भाषासमिति के उपरान्त अब एषणासमिति की चर्चा करते हैं।  
गाथा मूलतः इसप्रकार है -

कदकारिदाणुमोदणरहिदं तह पासुगं पसत्थं च ।

दिण्णं परेण भत्तं समभुत्ती एसणासमिदी ॥६३॥

( हरिगीत )

स्वयं करना कराना अनुमोदना से रहित जो।

निर्दोष प्रासुक भुक्ति ही है एषणा समिति अहो ॥६३॥

स्वयं की कृत, कारित, अनुमोदना से रहित, पर के द्वारा दिया हुआ प्रासुक और प्रशस्त भोजन करनेरूप सम्यक् आहार ग्रहण एवं तत्संबंधी शुभभाव एषणासमिति है।

इस गाथा के भाव को तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“यहाँ एषणासमिति का स्वरूप कहा है। वह इसप्रकार है -

मन, वचन और काय - इन तीनों का कृत, कारित और अनुमोदना - इन तीनों से गुणा करने पर नौ भेद हो जाते हैं। जिस भोजन में मुनिराजों की उक्त नौ प्रकारों की किसी भी रूप में संयुक्तता हो, वह भोजन विशुद्ध नहीं है - ऐसा शास्त्रों में कहा है। हरितकाय के सूक्ष्म प्राणियों के संचार से अगोचर अति प्रशस्त अन्न प्रासुक अन्न है - ऐसा शास्त्रों में कहा है।



पड़गाहन, उच्चस्थान, पादप्रक्षालन, अर्चन, प्रणाम, मन-वचन-काय की शुद्धि और भिक्षा शुद्धि - इन नवधा भक्ति से आदर करके; श्रद्धा, शक्ति, अलुब्धता, भक्ति, ज्ञान, दया, और क्षमा - दाता के इन सात गुणों सहित शुद्ध योग्य आचारवाले उपासक द्वारा दिया गया आहार जो परम तपोधन लेते हैं, उसे एषणासमिति कहते हैं।

यह व्यवहार एषणासमिति है। निश्चय एषणासमिति की तो ऐसी बात है कि जीव के परमार्थतः तो भोजन होता ही नहीं है। छह प्रकार का भोजन तो व्यवहार से संसारियों के ही होता है।”

इस गाथा के भाव को आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“निर्दोष आहार-पानी लेने की वृत्ति वह एषणासमिति है। मुनि अपने लिए बनाया हुआ अन्न-पानी ग्रहण नहीं करते। मन-वचन-काय तथा कृत-कारित-अनुमोदना - इन नवकोटि से अशुद्ध आहारादि मुनिराज नहीं स्वीकार करते। वह तो प्रासुक अर्थात् अचित्त, जीवरहित भोजन और जल भी उष्ण लेते हैं।

प्रशस्त अर्थात् अच्छा, शास्त्र में जिसकी प्रशंसा की गई हो, व्यवहार में जो प्रमादादि अथवा रोग का निमित्त न हो, ऐसा भोजन ग्रहण करने का शुभभाव वह व्यवहार एषणासमिति है।

मुनिराज को अन्दर निश्चयस्वभाव का भान है, सहज दशा से भ्रमण करते हुए आहार मिले, उस समय खाने की क्रिया तो उसके अपने कारण से होती है, तब जो अन्दर में विकल्प होता है उसकी यहाँ बात है।”

उक्त गाथा में एषणासमिति का स्वरूप स्पष्ट किया गया है। जिस आहार से आहार ग्रहण करनेवाले मुनिराज का नवकोटि से किसी भी प्रकार का संबंध न हो; ऐसा अनुद्दिष्ट, प्रासुक आहार ४६ दोष और ३२ अन्तराय टालकर विधिपूर्वक ग्रहण करना एषणासमिति है।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज ‘तथा चोक्तं - तथा कहा भी’ - ऐसा कहकर एक गाथा प्रस्तुत करते हैं, जो इसप्रकार है -

णोकम्मकम्महारो लेप्याहारो य कवलमाहारो ।

उज्ज मणो वि य कमसो आहारो छव्विहो णेयो ॥

( दोहा )

लेप कवल मन ओज अर कर्म और नो कर्म ।

छह प्रकार आहार के कहे गये जिनधर्म ॥

नोकर्माहार, कर्माहार, लेपाहार, कवलाहार, ओजाहार और मनाहार - इसप्रकार क्रम से आहार छह प्रकार का जानना।

अशुद्ध जीवों के विभावधर्म के संबंध में यह व्यवहारनय का उदाहरण है। अब निश्चयनय का उदाहरण कहा जाता है -

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा।

अण्णं भिक्खमणेसणमध ते समणा अणाहारा।।<sup>१</sup>

( हरिगीत )

अरे भिक्षा मुनिवरों की एषणा से रहित हो।

वे यतीगण ही कहे जाते हैं अनाहारी श्रमण॥

एषणा (आहार की इच्छा) रहित आत्मा को युक्ताहार भी तप ही है और आत्मोपलब्धि के लिए प्रयत्नशील श्रमणों की भिक्षा भी एषणा रहित होती है। इसलिए वे श्रमण अनाहारी ही हैं।

प्रवचनसार की इस गाथा में यह कहा गया है कि श्रमण दो प्रकार से युक्ताहारी सिद्ध होता है। पहली बात तो यह है कि उसका ममत्व शरीर पर न होने से वह उचित आहार ही ग्रहण करता है - इसलिए युक्ताहारी है। दूसरी बात यह है कि 'आहार ग्रहण करना आत्मा का स्वभाव ही नहीं है' - ऐसे परिणामरूप योग मुनिराजों के निरन्तर वर्तता है; इसलिए वह श्रमण योगी है, उसका आहार युक्ताहार है, योगी का आहार है।

तात्पर्य यह है कि वह एषणासमितिपूर्वक आहार लेने से और अनशनस्वभावी होने से मुनिराज युक्ताहारी ही हैं।

इसके बाद मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव 'तथा गुणभद्रस्वामी ने भी कहा है' - ऐसा कहकर एक छन्द प्रस्तुत करते हैं; जो इसप्रकार है -

( मालिनी )

यमनियमनितान्तः शांतबाह्यान्तरात्मा

परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकंपी।

विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं

दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः।।<sup>२</sup>

( हरिगीत )

जो सभी के प्रति दया समता समाधि के भाव से।

नित्य पाले यम-नियम अर शान्त अन्तर बाह्य से॥

१. प्रवचनसार, गाथा २२७

२. आत्मानुशासन, श्लोक २२५

शास्त्र के अनुसार हित-मित असन निद्रा नाश से।

वे मुनीजन ही जला देते क्लेश के जंजाल को॥

जिन्होंने अध्यात्म का सार निश्चित किया है, समझा है; जो अत्यन्त यम-नियम सहित हैं; जिनका आत्मा भीतर-बाहर से शान्त हुआ है; जिन्हें समाधि प्रगट हुई है, परिणमित हुई है; जिनके हृदय में सभी जीवों के प्रति अनुकंपा है; जो शास्त्रानुसार हितकारी सीमित भोजन करनेवाले हैं; जिन्होंने निद्रा का नाश किया है; वे मुनिराज क्लेशजाल को समूल भस्म कर देते हैं।

इस छन्द का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“मैं ज्ञानदर्शनस्वभावी हूँ, परमानन्द की मूर्ति हूँ, शुभाशुभ राग रहित त्रिकाली आत्मा हूँ, शरीर-वाणी आदि पदार्थों की क्रिया आत्मा कर सकता नहीं, आहार का ग्रहण-त्याग मेरे स्वभाव में है ही नहीं” - इसप्रकार जिसने सभी पहलुओं से प्रथम आत्मा का निर्णय किया है, वह जीव सम्यग्दृष्टि है। प्रथम ऐसे आत्मा का निर्णय करने के बाद स्वरूप में विशेष रमणता जिसने प्रकट की है, वह जीव अत्यन्त यम-नियम सहित है, स्वरूपरमणतारूप चारित्रयुक्त है।

जो बाहर से और अन्दर से शान्त हुआ है, जिसको समाधि परिणामी है, जिसको सब जीवों के प्रति अनुकम्पा है, जो शास्त्र की आज्ञानुसार हित-मित भोजी है, जिसने निद्रा का नाश किया है, वह आत्मलीन भावलिङ्गी मुनि क्लेशजाल का समूल नाश करता है।<sup>१</sup>

वे वीतरागी मुनि छठे गुणस्थान में आवें तब विकल्प उठे कि आहार ग्रहण करें। आहार भी भगवान वीतराग की आज्ञा प्रमाण शास्त्रानुसार हित-मित ही लेते हैं।

छठे-सातवें गुणस्थान में हजारों बार झूलते मुनि के छठे गुणस्थान में अल्प निद्रा होती है। छठी भूमिका में किंचित् निद्रा लेकर फिर तुरन्त ही अन्तर्मुहूर्त में सातवीं भूमिका में आ जाते हैं। मुनिराज घन्टे दो घन्टे निद्रित हो जावें ह्व ऐसा नहीं होता, कारण कि वे छठे गुणस्थान में थोड़े काल रहकर शीघ्र ही सातवें में आ जाते हैं।

इसप्रकार स्वरूप में उग्र लीनता द्वारा जिनको गहरी निद्रा का नाश हुआ है, वे मुनिराज क्लेशजाल को समूल नाश करके वीतराग होकर परमशान्तदशा को प्राप्त होते हैं।<sup>२</sup>”

इसप्रकार हम देखते हैं कि इस छन्द में भी समितियों के धारी तपस्वी मुनिराजों

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ५४०

२. वही, पृष्ठ ५४०-५४१

के स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है।

इसके बाद टीकाकार मुनिराज 'तथा हि' लिखकर एक छन्द स्वयं लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( शालिनी )

भुक्त्वा भक्तं भक्तहस्ताग्रदत्तं  
ध्यात्वात्मानं पूर्णबोधप्रकाशम्।  
तप्तवा चैवं सत्तपः सत्तपस्वी  
प्राप्नोतीद्धां मुक्तिवारांगनां सः ॥८६॥

( हरिगीत )

भक्त के हस्ताग्र से परिशुद्ध भोजन प्राप्त कर।  
परिपूर्ण ज्ञान प्रकाशमय निज आत्मा का ध्यान धर ॥  
इसतरह तप तप तपस्वी निरन्तर निज में मगन।  
मुक्तिरूपी अंगना को प्राप्त करते संतजन ॥८६॥

भक्तों के हाथ के अग्रभाग से दिया गया भोजन लेकर, पूर्ण ज्ञान-प्रकाशवाले आत्मा का ध्यान करके; इसप्रकार सम्यक् तप को तपकर सच्चे तपस्वी संतजन दैदीप्यमान मुक्तिरूपी वारांगना (स्त्री) को प्राप्त करते हैं।

इस छन्द में यही कहा गया है कि निश्चय-व्यवहार एषणासमिति के धनी तपस्वी मुनिराज मुक्ति को प्राप्त करते हैं।

**नियमसार गाथा ६४**

विगत गाथा में एषणासमिति की चर्चा करने के उपरान्त अब इस गाथा में आदाननिक्षेपणसमिति की चर्चा करते हैं।

गाथा मूलतः इसप्रकार है -

पोत्थङ्कमंडलाइं गहणविसग्गेसु पयतपरिणामो।  
आदावणणिक्खेवणसमिदी होदि त्ति णिद्धिद्धा ॥६४॥

( हरिगीत )

पुस्तक कमण्डल संत जन नित सावधानीपूर्वक।  
आदाननिक्षेपणसमिति में ग्रहण-निक्षेपण करें ॥६४॥

पुस्तक, कमण्डल आदि रखने-उठाने संबंधी प्रयत्न परिणाम आदाननिक्षेपण-समिति है - ऐसा कहा गया है।

इस गाथा के भाव को तात्पर्यवृत्ति टीका में मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव इसप्रकार

स्पष्ट करते हैं -

“यहाँ आदाननिक्षेपणसमिति का स्वरूप कहा गया है। यह अपहृत संयमियों (व्यवहारसंयम या अपवादसंयम) को संयम और ज्ञानादिक के उपकरण उठाते-रखते समय उत्पन्न होनेवाली समिति का प्रकार कहा है।

उपेक्षा संयमियों (निश्चयसंयम-उत्सर्गसंयम) के पुस्तक व कमण्डलादि नहीं होते; क्योंकि वे परमजिनमुनि सम्पूर्णतः निष्पृह होते हैं; इसलिए वे बाह्य उपकरणों से रहित होते हैं।

निजपरमात्मतत्त्व को प्रकाशन करने में दक्ष आभ्यन्तर उपकरणरूप निरुपाधिस्वरूप सहज ज्ञान के अतिरिक्त उन्हें अन्य कुछ भी उपादेय नहीं है।

अपहृत संयमधरों को परमागम के अर्थ का पुनः पुनः प्रत्यभिज्ञान होने में कारणभूत पुस्तक ज्ञान का उपकरण है, कायविशुद्धिभूत शौच का उपकरण कमण्डलु है और संयम का उपकरण पीछी है।

इन उपकरणों को उठाते-रखते समय उत्पन्न होनेवाली प्रयत्न-परिणामरूप विशुद्धि ही आदाननिक्षेपणसमिति है - ऐसा शास्त्रों में कहा है।”

उक्त गाथा व उसकी टीका का भाव आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी इसप्रकार स्पष्ट करते हैं -

“अपवादसंयमवाले मुनि को अपहृतसंयमी कहते हैं। अन्तरभानसहित रमणता तो प्रकटी है; किन्तु पुरुषार्थ की निर्बलता से विकल्प उठता है, अतः सातवीं भूमिका से च्युत हो जाते हैं, तब विकल्पयुक्त होने के कारण उन मुनि को अपहृतसंयमी कहते हैं।

अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग, हीनसंयम, सरागचारित्र और शुभोपयोग - इन सबका एक ही अर्थ है।

अन्दरस्वभाव प्रकट हुआ है वह निश्चय है और विकल्प - राग उठता है वह व्यवहार है। श्रद्धा-ज्ञान का निश्चय तो चौथे गुणस्थान में ही प्रकट हो गया है, किन्तु चारित्र अपेक्षा से निर्विकल्प स्वरूपरमणता-रूप निश्चय सातवें गुणस्थान में होता है।

शुभोपयोगी मुनि को - छठी भूमिका में वर्तते मुनि को संयम, ज्ञान तथा शौच के उपकरण - पीछी, शास्त्र और कमण्डलु रखते-उठाते समय विकल्प का प्रकार यहाँ बताया है।

सातवीं भूमिका में स्थिर हो गए हों उन्हें तो वे उपकरण होते नहीं, अर्थात् उन संबंधी विकल्प उनको उठता नहीं - उपेक्षा वर्तती है; अतः उन्हें उपेक्षासंयमी कहा गया है।

उपेक्षासंयमवाले मुनि को उपेक्षासंयमी कहते हैं। उत्सर्ग, निश्चय नय, सर्व-परित्याग, उपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र और शुद्धोपयोग इन सबका एक अर्थ है। उपेक्षासंयमवाले मुनि अत्यन्त निस्पृह होते हैं।<sup>१</sup>”

उक्त सम्पूर्ण कथन का सार यह है कि जब मुनिराज छठवें गुणस्थान में होते हैं; तब उनके पास पीछी, कमण्डलु और शास्त्र होते हैं, हो सकते हैं; क्योंकि पीछी के बिना अहिंसक आचरण, कमण्डल के बिना शौचादि की शुद्धि और शास्त्र के बिना स्वाध्याय संभव नहीं है।

इन तीनों को उपकरण कहा गया है। जब ये उपकरण उनके पास होंगे तो इनके उठाने-रखने में प्रमादवश या असावधानी के कारण किसी भी प्रकार के जीवों का घात न हो जावे - इस बात की सावधानी रखना ही आदाननिक्षेपणसमिति है।

इस ६४वीं गाथा को पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज पद्मप्रभमलधारिदेव एक छन्द लिखते हैं; जो इसप्रकार है -

( मालिनी )

समितिषु समितीयं राजते सोत्तमानां  
परमजिनमुनीनां संहतौ क्षांतिमैत्री ।  
त्वमपि कुरु मनःपंकेरुहे भव्य नित्यं  
भवसि हि परमश्रीकामिनीकांतकांतः ॥८७॥

( हरिगीत )

उत्तम परमजिन मुनि के सुख-शान्ति अरु मैत्री सहित ।  
आदाननिक्षेपण समिति सब समितियों में शोभती ॥  
हे भव्यजन ! तुम सदा ही इस समिति को धारण करो ।  
जिससे तुम्हें भी प्राप्त हो प्रियतम परम श्री कामिनी ॥८७॥

उत्तम परमजिन मुनियों की यह आदाननिक्षेपण समिति सभी समितियों में शोभायमान होती है और इस समिति के साथ में उन मुनिराजों के शान्ति और मैत्री भी होते ही हैं। हे भव्यजनो ! तुम भी अपने हृदयकमल में उक्त समिति को धारण करो कि जिससे तुम भी परमश्री कामिनी के कंत हो जावोगे।

इस कलश में यही प्रेरणा दी गई है कि आप भी इस समिति को धारण करो, इससे तुम्हें भी मुक्तिवधू प्राप्त हो जावेगी। ●

१. नियमसार प्रवचन, पृष्ठ ५४५-५४६